कुछ तो हक अदा हुआः नागार्जुन की बाँग्ला कविता

प्रफुल्ल कोलख्यान

नागार्जुन ने कई भारतीय भाषाओं में कविता को संभव किया था। हिंदी के अलावे मैथिली, बाँग्ला, संस्कृत में उनकी कई कविताएँ उपलब्ध हैं। कुछ अन्य भाषाओं में कविता लिखे जाने की सूचना भर उपलब्ध है। नागार्जुन हिंदी के बड़े कवि हैं। किसी भी बड़े रचनाकार की रचनाओं को कई दृष्टिकोण और दृष्टि-बिंदुओं से समझे जाने की जरूरत हमेशा ही बनी रहती है। भारत अपने-आप में बड़ा है। इस बड़े भारत के बड़े कवि को समझने के लिए भी बड़े फलक की जरूरत है। मैथिली नागार्जुन की मातृभाषा थी। मैथिली न सिर्फ उनकी मातृभाषा थी बल्कि मैथिली से उनको बड़ा गहरा लगाव भी था। खास बात यह कि मैथिली से उनके गहरे लगाव और अनुराग ने अन्य भाषाओं के प्रति उनके लगाव और

अनुराग को कम नहीं किया था, बल्कि बढ़ाया ही था। 'नागार्जुन मैथिल थे। मैथिली उनकी मातृभाषा थी। वे मैथिली में भी लिखते थे। वे सिर्फ मैथिली में ही नहीं बांग्ला और संस्कृत में भी लिखते थे। मैथिली का होना उनके लिए हिंदी का होने में बाधक नहीं सहायक और आवश्यक ही था। इसलिए मैथिली के साथ ही वे हिंदी के भी उतने ही थे। विचार किया जाना चाहिए कि यह जानने के बावजूद कि जो कद मिलना हिंदी में संभव है, वह बांग्ला और संस्कृत में तो नहीं ही संभव है, शायद मैथिली में भी संभव नहीं है; नागार्जुन उन भाषाओं में लिखने का जोखिम उठाने से हिचकते नहीं थे तो उसके पीछे क्या सोच सक्रिय हो सकता है? अँगरेजी में कभी हाथ आजमाया नहीं, इस बारे में भी सोचना चाहिए। यह भी, कि आज हम सिर्फ हिंदी में ही लिखने को क्यों काफी मानते हैं! यह देखना चाहिए कि मैथिली में लिखना नागार्जुन के लिए हिंदी महाजातीयता की अपनी जड़ों से जुड़े रहने, बांग्ला में लिखना हिंदी महाजातीयता की निकटवर्ती जातीयता की संवेदना से जुड़ने और संस्कृत में लिखना छुटी हुई जीवंत संवेदना को भी हिंदी महाजातीयता में बनाये रखने की आवश्यकता की समझ से कितना अर्थवान है।' (संदर्भ मेरा लेखः नवोन्मेष की चुनौती के सामने हिंदी समाज और साहित्य)। यहाँ यह भी याद रखने की जरूरत है कि 'सामाजिकता का एक और महत्त्वपूर्ण अधार है भाषा। भाषा अपने आप में एक ऐसी सामाजिक शक्ति है जिसके साथ बहुत अधिक छेड़-छाड़ संभव नहीं हुआ करता है। इधर संचार माध्यमों की प्रभुता ने लेकिन सफलतापूर्वक देशी भाषाओं के साथ छेड़-छाड़ प्रारंभ किया है। कहना न होगा कि मातृभाषा का अपना महत्त्व हुआ करता है। निश्चित रूप से इसे स्वीकार करना ही चाहिए। लेकिन राष्ट्रभाषाओं या राजभाषाओं का भी अपना महत्त्व हुआ करता है। राष्ट्रीय जीवन में इसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है, नहीं की जानी चाहिए। मातृभाषा प्रेम राष्ट्र या राजभाषा के प्रति दुराव या घृणा का आधार नहीं बन सकता है। इधर, मातृभाषा प्रेम के लिए विश्व स्तर पर नये सिरे से अभियान चलाया जा रहा है। मातृभाषा के नाम पर भावनात्मक शोषण अधिक आसान होता है। इसलिए मातृभाषा प्रेम के इस नये आग्रह के अंतर्निहित मूल अभिप्राय को धैर्य और सावधानी से समझना होगा। असल बात यह है कि बाजार अपनी स्वाभाविक धारक और शासक भाषा (Covering & Governing Language) के रूप में तो अंग्रेजी को चाहती है लेकिन लोकरंजन (Language of Entertainment) के महत्त्व को भी जानती है। इसलिए बाजार अपना लिखित कारोबार तो अंग्रेजी में करता है क्योंकि वह बहुत गोचर नहीं होता है लेकिन बोलचाल में अंग्रेजी मिश्रित भाषाओं को प्रश्रय देने की मुहिम को हवा देता है। वह बड़ी तेजी से

हिंग्रेजी (हिंदी+अंग्रेजी) और बंग्रेजी (बांग्ला+अंग्रेजी) आदि जैसी भाषिक संरचनाओं को आकार देने के प्रयोग पर दत्तचित्त होकर काम कर रहा है। इसे भाषाओं के बीच आदान-प्रदान के नैसर्गिक प्रवाह समझना भूल है। इसके पीछे की उनकी सक्रियता और धूर्त्तता को समझना ही होगा। धूर्त्तता यह कि बांग्ला, हिंदी आदि पार्श्ववर्ती भाषाओं की नैसर्गिक निकटता किसी प्रकार बढ़ने न पाये बल्कि धीरे-धीरे दूरियाँ बढ़े। हिंग्लिश (हिंदी+इंग्लिश) और (बांग्ला+इंग्लिश) बंग्लिश का विकास तेजी से हो लेकिन किसी भी प्रकार से बांग्दी (बांग्ला+हिंदी) आदि के विकास की कोई सामाजिक आकांक्षा न बने। बल्कि, दूरियाँ इतनी बढ़े कि उनकी बोलियाँ और शैलियाँ भी उन से अपने स्वाभाविक, ऐतिहासिक, सामाजिक संबंधों को नकार दें। सामासिक एकता के सारे सामाजिक संबंध-सूत्र बाहरी दबाव और आंतरिक तनाव को झेल नहीं पायें और बिखर जाएँ।' (संदर्भ मेरा लेखः आलोचना और समाज) एक खास बात लक्षित की जा सकती है कि किसी के प्रति गहरा लगाव और अनुराग बड़प्पन की सीमा नहीं शक्ति बनता है। नागार्जुन की रचनाशीलता के विविध आयामों पर गौर करने से यह सहज ही भासित होने लगता है कि नागार्जुन का गहरा लगाव और अनुराग जिन से भी था, वे कभी उनकी रचनाशीलता और उनके व्यक्तित्व की सीमा नहीं बन पाये। नागार्जुन का बुद्ध विचार से गहरा लगाव और अनुराग था लेकिन इसने मार्क्सवाद से उनके लगाव को कभी कम नहीं किया। मार्क्सवाद के प्रति गहरा लगाव और अनुराग कभी उनकी राष्ट्रीय चेतना को कम नहीं कर पाई। चीन के संदर्भ में ही नहीं कई संदर्भों में लिखी उनकी कविताएँ साक्ष्य के तौर पर पढ़ी जा सकती हैं। वर्तमान के प्रति गहरा सरोकार कभी अतीत या भविष्य में उनकी आवाजाही को बाधित नहीं कर पायी। सफलकाम को अपनाने के लिए उन्होंने पूर्णकाम न हो सकनेवालों को त्याज्य नहीं प्रणम्य ही समझा। नागार्जुन ने रास्ते में मिले लोहे के गट्ठर को उठाने के लिए कभी लकड़ी के गट्ठर को कंधे से उतार नहीं फेंका और न सोने के गट्ठर को उठाने के लिए लोहे के गट्ठर को उतार फेंका। बल्कि रास्ते में जो भी काम का मिला उसे समेटते हुए चले। देश के प्रति लगाव कभी उनके देशातीत होने में बाधक नहीं हो पाया।

मिथिला में नहीं काशी में दिसंबर 1931 में लिखी मैथिली कविता 'अंतिम प्रणाम' मैथिली में बहुचर्चित है। दुख के सागर को पार करने अर्थात बौद्ध दिशा में आगे बढ़ते हुए उनके मन में गहरा द्वंद्व रहा होगा। नागार्जुन विवाहित थे और बौद्ध दिशा में आगे बढ़ने में यह बाधक था। ऐसे अवसरों पर जन्मना महान लोगों के मन में तो नहीं लेकिन साधारण लोगों के मन में एक असाधारण द्वंद्व उत्पन्न होता है। यही द्वंद्व साधारण को असाधारण बनाता है। बहरहाल, 'अंतिम प्रणाम'

की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं– 'हे मातृभूमि, अंतिम प्रणाम/ अहिवातक पातिल के फोड़ि-फाड़ि/ पहिलुक परिचयकेँ तोड़ि-ताड़ि/ पुरजन-परिजन सब छोड़ि-छाड़ि/ हम जाय रहल छी आन ठाम/ माँ मिथिले, ई अंतिम प्रणाम'। यह कविता नागार्जुन को समझने के लिए बहुत महत्त्व की है। यह तो सबको मालूम ही है कि अंतिम समय तक नागार्जुन का लगाव न सिर्फ मातृभूमि से बना रहा, बल्कि वैवाहिक शुभ-घट की मार्यादा को भी उन्होंने खूब निभाया। रवींद्रनाथ ठाकुर की कविता के शब्द 'युग-युग धावित यात्री' की प्रेरणा से मैथिली में अपना नाम न सिर्फ यात्री रखा बल्कि उसे सार्थक भी किया। कई घरों को अपना घर बनानेवाले नागार्जुन का अपना घर कभी पराया नहीं हुआ; वे घरों में रहते हुए कभी अपने घर को भूल नहीं पाये और न अपने घर में रहते हुए कभी घरों को भूल पाये। नागार्जुन छोड़कर नहीं साथ लेकर ही आगे बढ़ते थे। आगे बढ़ने के दौरान भले ही कुछ छूट जाए तो छुट जाए। महत्त्व आगे बढ़ने का रहा। इसलिए तत्काल को केंद्र में रखकर लिखी गई कविताएँ कालातीत हो जाती हैं, स्थान को लेकर लिखी कविताएँ स्थान की सीमाओं को अतिक्रमित कर जाती हैं, व्यक्ति को केंद्र में रखकर लिखी गई कविताएँ परा-वैयक्तिक हो जाती हैं, घटना के केंद्र में रखकर लिखी गई कविताएँ घटनातीत हो जाती हैं। नागार्जुन बचपन को छोड़कर यौवन में नहीं आते और अपने बुढ़ापे में भी बचपन और यौवन को बरकरार रखते हैं; यही कारण है कि नागार्जुन की कविताएँ हर पीढ़ी के सहमेल में होकर भी उससे कुछ भिन्न होती हैं। नागार्जुन की यात्रा बहुत टेढ़े-मेढ़े और उभर-खाबड़ रास्तों के तीखे मोड़ों को पार करते हुए जारी रहती है। नागार्जुन के सामने कविता का कोई राजपथ उपलब्ध नहीं था। स्वाभाविक है कि कई लोगों को उसमें भटकाव नजर आने लगता है, यह नागार्जुन का भटकाव नहीं बनाव है। इस बनाव को ध्यान में रखकर ही नागार्जुन की बाँग्ला कविताओं को समझा जा सकता है।

बाँग्ला

नागार्जुन के लिए कोई अन्य भाषा नहीं थी। नागार्जुन की मातृभाषा मैथिली और बाँग्ला में सामिप्य और समानता दोनों है। मैथिली के कवि विद्यापति ठाकुर को बाँग्ला के आदि कवियों के साथ पढ़ा जाता है। एक समय विद्यापति को बंग-संतान ही नहीं रवींद्रनाथ ठाकुर की वंश-परंपरा के पूर्व-पुरुषों से जोड़कर भी देखा जाता था। विद्यापति की पदावली अंत में ब्रज नारी को संबोधित करती है, लेकिन ब्रज की दिशा में विद्यापति की पदावलियों का प्रसार मुश्किल ही बना रहा जबकि बंगाल समेत पूर्वांचल में उसका सहज प्रसार हुआ। बंगाल और मिथिलांचल में खान-पान, रहन-सहन, आचार-आचरण, समुदाय-संघटन,

रीति-रिवाज भाषिक संरचना और लिपि के साम्य के सांस्कृतिक संकेतों को पढ़ना बहुत कठिन नहीं है। तात्पर्य यह कि बाँग्ला और हिंदी नागार्जुन की कविता के लिए अपनी मातृभाषा मैथिली का ही विस्तार है। हालाँकि, आरंभ में विद्या और ज्ञान की भाषा संस्कृत बनी। कविता की शुरुआत भी संस्कृत में ही हुई थी। संस्कृत के लिखित साहित्य का अपना महत्त्व है। लेकिन अगली रचनाशीलता की धुरी से संस्कृत के छिटक जाने की बात तो बहुत पहले सामने आ गई थी। तथापि, संस्कृत भाषा के तत्त्व और कौशल के महत्त्व को भारत के बड़े कवियों ने अपने-अपने ढंग से बरता। नागार्जुन ने भी संस्कृत के भाषिक तत्त्वों का खूब इस्तेमाल किया। संस्कृत में काव्यतीर्थ की परीक्षा के चलते कोलकाता में रहना हुआ। इस बीच नागार्जुन का परिचय बँगला साहित्य से हुआ और यह परिचय आजीवन बना रहा। कोलकाता को नागार्जुन अपना दूसरा घर मानते थे। शोभाकांत बताते हैं मौलिक रूप से बाँग्ला लिखना फरवरी 1978 से शुरू किया।

यह जानना दिलचस्प होगा कि बाँग्ला भाषा-साहित्य से भली-भाँति परिचित होने के बावजूद नागार्जुन ने 1978 के पहले बाँग्ला में कविता लिखने की बात क्यों नहीं सोची और 1978 में ऐसी क्या बात थी कि नागार्जुन ने बाँग्ला में मौलिक रूप से लिखना शुरू कर दिया। क्या नागार्जुन आपातकाल के बाद किसी नई शुरुआत की तैयारी कर रहे थे? यहाँ ठहरकर यह याद कर लेना जरूरी लग रहा है कि सी.पी.आई. ने 1975 में घोषित राजनीतिक आपातकाल का समर्थन ही किया था जबकि सी.पी.आई (एम) ने विरोध किया था। नागार्जुन ने भी इस राजनीतिक आपातकाल का पुरजोर विरोध किया था। नागार्जुन ने लगभग सत्तर की उम्र में बाँग्ला कविता लिखना शुरू किया था। सत्तर की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते तो बहुत सारे महत्त्वपूर्ण लेखकों का लेखन स्वाभाविक रूप से स्थगन के दौर में प्रवेश कर जाता है, जबकि नागार्जुन की रचनाशीलता अपनी नई शुरुआत की ओर बढ़ने की कोशिश कर रही थी। जो भी हो नागार्जुन ने बाँग्ला में कई कविताएँ लिखी जिन में से कई छपी और चर्चित भी हुईं। इन तमाम बातों के बावजूद नागार्जुन मूल रूप से हिंदी के ही कवि हैं। उनका मन हिंदी में ही रमता था। इसके कारण हैं। बाँग्ला हो या मैथिली हिंदी की तुलना में ये सांस्कृतिक भाषाएँ अधिक है और इनकी तुलना में हिंदी राजनीतिक भाषा अधिक है। नागार्जुन अपने मूल रूप में राजनीतिक कवि हैं। नागार्जुन की बाँग्ला कविताओं का महत्त्व तो कई दृष्टियों से है लेकिन मुख्य बात यह है कि नागार्जुन के रचनाशील मिजाज को समझने में इन से कुछ मदद मिल सकती है।

नागार्जुन की बाँग्ला कविताओं का देवनागरी लिप्यंतर और और उनके हिंदी अनुवाद का संग्रह 1997 में 'मैं मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा' नाम से छपा। नागार्जुन की कविताओं की खासियत व्यंग्य में झलकती है। नामवर सिंह ने तो नागार्जुन के व्यंग्य पर बहुत सटीक टिप्पणी की है। नागार्जुन के व्यंग्य-बोध में आत्म-व्यंग्य के लिए भी बहुत जगह है। बाँग्ला की दो कविताओं में नागार्जुन के गहरे आत्म-व्यंग्य को गंभीरता से रेखांकित किया जा सकता है– एक कविता है 'भावना प्रवण यायावर' और दूसरी कविता है 'आमि मिलिटारिर बूड़ो घोड़ा'। 'भावना प्रवण यायावर' की पंक्तियां हैं– 'भावना प्रवण यायावर/ ओइ जे बुड़ो मानुष/ आध पागला झानु/ हयत मारा जाबेन एक दिन/ ट्राम लाइने धारे पड़े थाकबेन// केउ नेइ जे ओके बुझिए-सुझिए/ कोथाओ बसिये राखबे..'। इसके साथ ही 'आमि मिलिटारिर बूड़ो घोड़ा' की इन पंक्तियों को रखकर देखना चाहिए– 'आमि/ मिलिटारिर बुड़ो घोड़ा/ आमा के ओरा कोरबे निलाम/ कोनो चतुर ताँगावाला/ निये जाबे आमाके/ बोसिये देबे चोखेर धारे/ रंगीन खोलश/ बलते थाकबे:/ सामने चल बेटा/ सामने चल/ सामने...'। कितने अकेलेपन और कैसी नियति के सामने खड़ा है भावना प्रवण वृद्ध मनुष्य! विकल्प क्या है! संघर्षशील रचनाशीलता और जन-विवेक से संपन्न किंतु जीवन की भौतिक सुविधा से विपन्न कवि का प्रतीक सेना का बूढ़ा घोड़ा किसी ताँगावाला के इशारे पर सामने चलने के लिए बाध्य होगा या फिर ट्राम लाइन के किनारे किसी दिन मरा हुआ पाया जायेगा। इस ताँगेवाले की पहचान क्या सचमुच मुश्किल है! इन कविताओं साथ ही छोटी-सी कविता 'विप्लव विलास' की पंक्तियों को भी देखना जरूरी है, क्योंकि ये पंक्तियाँ उस भाषा में है जिस भाषा से जुड़े नागार्जुन की विचारधारा के लोगों को जनता ने मुग्ध करते हुए अभी-अभी संसदीय-सत्ता सौंपी थी और इसी के साथ ही विप्लव का नया रास्ता खुलनेवाला बताया जा रहा था। कविता 'विप्लव विलास' के संभव होने की तारीख 20 अगस्त 1978 बताई गई है और पंक्तियाँ हैं– 'कुंठित होइ कखनो एवं कखनो हताश/ ओरा कोरुक वितर्को, आमि फेल न कि पास/ थर थर काँपिते छे, दुर्बल हाथेर ताश/ बुड़ो वयसे खाप खाएनि विप्लव विलास'। कितना उद्दंड साबित हुआ बूढ़े वयस में विप्लव से विलास का संयोग, इसे बिना किसी गहन विश्लेषण के महसूस करना क्या आज भी कठिन है! इसी तरह एक कविता 5 नवंबर 1978 की है 'निर्लज्य नाटक'। 'निर्लज्य नाटक' की पंक्तियाँ हैं –'राजनीति होयेछे संप्रति निर्लज्ज नाटक/ आमिओ कोरे छि यत्र-तत्र अनेक त्राटक/

कोथाओ अध्यक्ष एवं कोथाओ उद्धाटक/ खुले दियेछि शत-शत महामुक्तिर फाटक'। नागार्जुन खुद को भी कहीं किसी तरह की रियायत नहीं देते हैं।

नागार्जुन की एक खासियत यह भी है कि वे चाहे जिस किसी भी भाव-मुद्रा में रहें उनकी एक नजर युवाओं पर जरूर रहती है। नागार्जुन की एक कविता 24 जुलाई 1978 की है –'ओइ माताल युवक' और पंक्तियाँ हैं– 'छत्रिश बछर वयसेर/ ओइ माताल युवक/ बेश भालइ लेखा पाड़ा करतो/ ओर कवि प्रतिभा एकदा/ आमा के चमत्कृत कोरे छिलो// एखन कि ये हेएछे ओर// आज सकाले ओर बाबार/ संगे देखा कोरते गियेछि/ उनि बललेन–/ प्रभात संप्रति दारूण माताल/ ओके एखन आपनि/ किच्छु बलवेन ना/ ओ एखन एके बारेइ खाप छाड़ा'। किसी समाज में कवि प्रतिभा संपन्न किसी युवा का बेलीक हो जाना कितनी बड़ी दुर्घटना है इसे नागार्जुन की काव्य प्रतिभा भली-भाँति समझती है। पश्चिम बंगाल में यह दारुण दृश्य बहुत आम रहा है। खास बाँग्ला में लिखे जाने के कारण इन कविताओं के भावार्थ में एक अलग आयाम जुड़ता है। कहना न होगा कि नागार्जुन इस अर्थ में भी बड़े राजनीतिक कवि हैं कि उनकी कविताएँ अपनी विचारधारा– शायद विचारधाराओं कहना अधिक उचित है– की व्यावाहारिक राजनीति और सामाजिक चेतना के आगे चलती हैं बिना इस बात की परवाह किये कि वे उन्हें फेल करेंगे या पास करेंगे। चाहे हिंदी हो, मैथिली हो या बाँग्ला ही क्यों न हो नागार्जुन अपने जनकवि होने के दायित्व और जनशक्ति को पहचानते हैं इसलिए पास-फेल की दुविधा में कहीं भी हकलाते नहीं हैं। विचारधारा की प्रतिबद्धता नागार्जुन को राजनीतिक कवि तो बनाती है किंतु विचारधारा से प्रतिबद्धता की जोरदार घोषणा करते हुए भी उनकी कविताएँ उन्हें राजनीतिक दल या दलों का पिछलग्गू नहीं बनाती है।

3 फरवरी 1979 की एक बांग्ला कविता है– 'कि दरकार नाम-टाम बलार'। इस कविता में नागार्जुन अपने को नालंदा युग के बज्रयानियों के आदि पुरुष हिंदी के प्रथम कवि सिद्ध सरहपा, रजनीश के वृद्ध प्रपितामह, बूढ़े हिप्पियों का आदि ब्रह्म बताते हुए जे.एन.यू. के निकट सम्यक संबुद्ध होने की घोषणा करते हुए नये आर्य सत्य को प्रकट करते हैं इन शब्दों में– 'सम्यक संबुद्ध!/ भाषित होयेछे आमार चित्त फलके/ सत्य-चतुष्ट्य एइ प्रथम-प्रथम/ सुख सत्य/ सुखेर आकांक्षा सत्य/ सुख प्राप्तिर उपाय सत्य/ एवं सुख प्राप्तिर उद्भावना सत्य/ एइ आर्ष सत्य चतुष्ट्य प्रथम-प्रथम/ शुधु आमि जानते पेरेछि/ ताइ आमि ऐखोन परम ज्ञानी/ ताइ आमि ऐखोन परम सुखी!!' इसे पढ़ते समय यह ध्यान में रखना जरूरी है कि बाँग्ला भाषा, साहित्य और समाज के

सांस्कृतिक रचाव में बौद्ध गान और दूहा (दोहा) का बुनियादी महत्त्व है। बौद्धिकों और खासकर वाम बौद्धिकों के चमकते गढ़, जे.एन.यू. के सामने नागार्जुन को प्राप्त होनेवाले इस नये आर्ष सत्य के बाँग्ला में प्रस्फुटन के राजनीतिक आशय को स्पष्ट करने के लिए क्या किसी अतिरिक्त व्याख्या की जरूरत है!

नागार्जुन की बाँग्ला कविताओं का अपना महत्त्व है। बाँग्ला भाषा साहित्य में इसका क्या महत्त्व आँका जाता है यह एक अलग विषय है। परंतु इतना निश्चित है कि नागार्जुन को समझने के लिए इन कविताओं का महत्त्व कमतर नहीं है। हिंदी में रेखांकित किये गये नागार्जुन के वैशिष्ट्य के अतिरिक्त उनकी बाँग्ला कविताओं में भी उनका कुछ अपना वैशिष्ट्य है। नागार्जुन की बाँग्ला कविताओं की विशेषताओं को ध्यान में रखने पर नागार्जुन की हिंदी कविताओं के अर्थ-गांभीर्य और उसमें निहित गूढ़ संकेतों को पकड़ने में अधिक सफाई आ सकती है। गाँवों के गुच्छा जैसा लगानेवाला कोलकाता शहर नागार्जुन का प्रिय रहा है। बौद्ध गान ओ दूहा की अनुगूँजों को अपने अंदर अनहद नाद की तरह महसूस करनेवाली, जयदेव, विद्यापति को समादृत करनेवाली चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण-विवेकानंद, रवींद्रनाथ ठाकुर की वाणी को मुखरित करनेवाली और 'आमार नाम, तोमार नाम, वियेतनाम, वियेतनाम' की घोषणा के साथ साम्राज्यवाद विरोधी स्वर को बुलंद करनेवाली बाँग्ला भाषा भी 'युग-युग धावित यात्री' कवि नागार्जुन को प्रिय थी। प्रिय का तो कुछ-न-कुछ हक भी बनता ही है। हक कभी पूरा अदा नहीं होता। पूरा न सही, कुछ तो हक जरूर अदा हुआ।

इस सामग्री के उपयोग के लिए लेखक की सहमति अपेक्षित है।
सादर, प्रफुल्ल कोलख्यान